स्त्री का संपूर्ण विकास कैसे हो?

प्रश्न- महिलाओं की समस्याओं से संबंधित प्रश्न, अस्पष्ट आवाज में रिकार्ड हुआ है।

यह पूरा जागतिक 'नारी-स्वतंत्रता आंदोलन' इस संबंध में उठा है कि महिलाओं को पुरुष के समान अधिकार मिलने चाहिए। यह आंदोलन महिलाओं द्वारा प्रणीत नहीं है। इस आंदोलन के पीछे भी पुरुष के विचार हैं। पिछले 5000 वर्षों में महिलाओं पर जो भी दमन घटित हुआ है, महिलाओं को जैसे भी पीड़ित किया गया है, महिलाओं की स्वतंत्रता, उनके व्यक्तित्व के विकास में जो अवरोध पैदा किए गए हैं, उन सारी सीमाओं के लादने के विरोध में जैसे यह विद्रोह है। विद्रोह हमेशा अंधे होते हैं, विद्रोह में प्रतिक्रिया होती है, विद्रोह में एक स्थिति को उलट देने का भाव होता है। लेकिन उससे क्या निर्मित होगा, यह विचार नहीं होता। यह विद्रोह अपने भीतर ठीक मालूम हो सकता है कि नारी को भी ठीक पुरुष के मुकाबले, ठीक वैसी ही व्यवस्था, ठीक वैसा ही नियमन, ठीक वैसा ही जीवन उपलब्ध होना चाहिए। लेकिन इस ठीक-सी दिखने वाली बात के भीतर बहुत अज्ञान छिपा हुआ हो सकता है।

स्त्री और पुरुष के समान अधिकार के भीतर यह भाव छिपा हुआ है कि स्त्री और पुरुष, गुण से समान हैं। यदि वे गुण से समान हैं, तो समान अधिकार उन्हें उपलब्ध हो जाएं तो उनका हित होगा। लेकिन मूलतः यदि वे गुण से समान नहीं हैं, प्रकृतितः यदि वे भिन्न हैं, तो उनको समान अधिकार देने का कोई मानी नहीं होगा। इसलिए मैं समान अधिकार मिलने चाहिए, यह नहीं कहता हूं, मैं कहता हूं अधिकार की समानता होनी चाहिए और इन दोनों बातों के कहने में बहुत अंतर है। समान अधिकार का अर्थ होता है- जैसे अधिकार पुरुष को उपलब्ध हैं, ठीक वे ही, वैसे ही अधिकार; वैसा ही क्षेत्र नारी को भी उपलब्ध होना जरूरी है। इसका अर्थ यह हुआ कि पुरुष की जो प्रतियोगिता की सीमा है, उसमें नारी को एक पुरुष की हैसियत से खड़ा हो जाना चाहिए।

नारी के, पुरुष के समान अधिकार का अर्थ है कि नारी को भी पुरुष ही मान लेना चाहिए, जहां तक अधिकारों का संबंध है। वहां हमें नारी में, पुरुष में अंतर नहीं करना चाहिए। नारी को एक पुरुष मान लेना बहुत भ्रान्त, अमनोवैज्ञानिक बात है।

नारी को पुरुष जैसे अधिकार मिल जाएंगे, परिणाम में नारी का नारीत्व नष्ट होगा। नारी के व्यक्तित्व के विकास की कोई सीमा उससे उपलब्ध नहीं होगी। मेरे देखने में, यह बात चाहे कितनी ही अजीब-सी मालूम हो--इस लोकतंत्र के जगत में जहां की समानता का भ्रम और समानता की पौराणिक कथा इतने जोर से प्रचलित हुई है कि मौलिक भेदों को भी आंख से ओझल किया जा रहा है--फिर भी मैं यह कहना चाहता हूं कि स्त्री और पुरुष मूलतः भिन्न हैं और उनके लिए समान अधिकार का कोई अर्थ नहीं होता। मूलतः भिन्न में मैं इस बात को मान कर चलता हूं कि स्त्री, और स्त्री का मन, और स्त्री के विकास का क्षेत्र पुरुष से बहुत भिन्न है। और यह विभिन्नता संस्कारों और समाज की व्यवस्था से उत्पन्न नहीं हुई है। यह विभिन्नता स्वभावगत है। इस विभिन्नता को हम किसी शिक्षा, इस विभिन्नता को किसी वातावरण, इस विभिन्नता को किसी संस्कार के नए रूपांतरण से ढाल और बदल नहीं सकते। जब तक जगत है, तब तक स्त्री और पुरुष की विभिन्नता कायम रहने को है, वह विभिन्नता स्वाभाविक, प्राकृतिक, सहज है।

इस विभिन्नता में कुछ बातें मैं गिनाना चाहता हूं, जैसे पहली बात प्रेम के संबंध में। स्त्री का प्रेम अत्यंत व्यक्तिगत है, वह जागतिक नहीं है, उसका दायरा बहुत बड़ा नहीं है। इसमें कोई दोष है, यह मैं नहीं कहता। बस

ऐसी स्थिति है। स्त्री जिस सीमा में प्रेम कर पाती है उसी सीमा में, उसी सीमा के विकास में, समृद्धि में, पूर्णता में उसका जीवन विसर्जित और समर्पित होता है। स्त्री बहुत दूर के मसले नहीं सोचती, नहीं सोच सकती, न उसने कभी सोचे हैं। और उसके मस्तिष्क पर दूर के मसले और दूर की सीमाएं लाद दी जाएंगी, तो दूर के मसले और सीमाएं तो वह नहीं सोच सकेगी, इतना ही होगा कि निकट के मसले उसके हाथ से खो जाएंगे। जो उसकी सहज सीमा है उसके आनंद की, उसकी प्रीति की, उसके कर्तव्य की, उसकी भावना की, वह भर नष्ट हो जा सकती है और परिणाम में स्त्री कुछ ऐसी हो जाए कि न तो वह पुरुष हो सके और न वह स्त्री बच जाए। ऐसा पश्चिम में हुआ है- पिछले 50 वर्षों में पश्चिम में नारी, धीरे-धीरे कम नारी होती गई है और नारी के मौलिक प्रेम के गुण नष्ट होते चले गए।

अब आज पश्चिम की नारी देखनेभर को शरीर की दृष्टि से नारी होगी, लेकिन उसके भीतर का समस्त जो प्राकृतिक रूप था, वह सब दमित हो गया है। परिणाम में दुःख, पीड़ा और संताप उसके जीवन में उदय हुए हैं। यह जो मैंने कहा कि एक घेरा है प्रीति का, यह घेरा बहुत व्यक्तिगत और साकार है। नारी के लिए निराकार में बहुत अर्थ नहीं है। चाहे निराकार ईश्वर हो, चाहे निराकार समस्याएं हों, चाहे निराकार भावनाएं हों, नारी के लिए कोई मायने निराकार में नहीं हैं। नारी का समस्त आकर्षण साकार के प्रति है और यह आकर्षण किसी व्यवस्था से, शिक्षा से बदला नहीं जा सकता है। नारी निरंतर साकार और सगुण की प्रीति से भरी हुई है।

पुरुष की स्थिति भिन्न है, पुरुष का आकर्षण निराकार के प्रति है। पुरुष की आकांक्षा असीम के प्रति है। पुरुष की सीमा उसके मन की उड़ान का आकार है, विभिन्न है। उसे अगर बहुत छोटे दायरे में बांधा जाए तो पुरुष टूटने लगता है। उसे अगर बहुत छोटे दायरे में सीमित किया जाए पुरुष को भारी हो आता है। पुरुष के स्वभाव के अंतर्गत है वह बड़े दायरे में, बढ़ी सीमा में है, उसके आकर्षण है। बड़े दायरे के जो आकर्षण हैं, वैसे पुरुष को अधिकार, वैसे पुरुष को कर्तव्य, वैसे पुरुष को शिक्षा और दीक्षा और वैसे पुरुष के अंतर विकास के लिए नियमन होना आवश्यक है। ठीक वैसा ही नियमन नारी के लिए समान अधिकार की मांग से हो जाए, तो नारी टूट जाएगी।

जब मैं कहता हूं अधिकार की समानता तो उसका अर्थ होता है पुरुष को अपने दायरे और सीमा में जैसे अधिकार मिलने चाहिए अपने अंतर विकास के लिए, वैसे ही नारी को अपने क्षेत्र और सीमा में अपने अंतर विकास के लिए पूरे के पूरे नियम मिलने चाहिए। वे नियम समान नहीं होंगे। वे नियम अलग-अलग होंगे, लेकिन उन नियमों की सीमा, उन नियमों का अधिकार जितना पुरुष को होगा अपने अंतर विकास के लिए, उतना ही नारी को अपने अंतर विकास के लिए होना चाहिए।

ये नारी के अंतर विकास में कुछ और बातें हैं जो जाननी जरूरी है। जैसे मैं पाता हूं कि नारी का सौभाग्य, नारी के जीवन का आनंद, एक के प्रति समर्पित होने में है, समर्पण में है। यह समर्पण पुरुष ने नारी पर लादा नहीं है, उसने आग्रह करके, दमन से, दबाव से उसे समर्पित होने को बाध्य नहीं किया है। समर्पण उसके स्वभाव में है। समर्पण में ही जैसे वह पूरी होती है। उसे परिपूर्ण समर्पित होने को कोई मिल जाए, उसका जीवन सौभाग्य से भर जाता है। यह समर्पण की व्यवस्था अनेक के प्रति नहीं हो सकती। नारी अनेक के प्रति समर्पित नहीं हो सकती और अगर नारी को अनेक के प्रति समर्पित होना पड़े, तो वह नारी नहीं रह जाएगी। न समर्पण हो पाएगा, न उसके जीवन की समृद्धि और पूर्णता हो सकेगी।

अब अभी समान अधिकार के नाम पर नारी को भी पुरुष से मुक्त होने का, पुरुष से दूर हटने का, विलग होने का, एक पुरुष के त्याग का पूरा-पूरा मौका मिला है। देखने पर ऊपर से ऐसा लगता है- यह ठीक है कि अगर पुरुष को जो अधिकार रहे हैं, वे नारी को मिल जाने चाहिए। यह बात ऊपर से देखने पर लोकतांत्रिक

मालूम होती है कि नारी को भी अलग हो जाने के, पृथक हो जाने के अधिकार होने चाहिए। लेकिन इसका पूरा का पूरा फायदा केवल पुरुष अपनी स्वच्छंदता को पूरा करने में ला सकता है। नारी इससे टूट ही जाएगी।

मेरी समझ में आता है कि पुरुष के मन में कुछ अनेक पत्नीव्रत का भाव है। पुरुष स्वभाव से एक पत्नी व्रत को राजी नहीं हुआ है। एक पत्नीव्रत जो आया था पिछले दिनों में, उसमें और कारणों के साथ-साथ नारी की ही प्रेरणा थी। मैं तो यह भी देख पाता हूं कि जो सभ्यता बनी, जो नगर बसे, नागरिक सभ्यता बनी, उसमें भी प्रेरणा नारी की थी। पुरुष स्वभाव से घुमक्कड़ है, अगर पुरुष के हाथ में जगत होता, तो जिस नागरिक सभ्यता को हम खड़ा हुआ देखते हैं वह कभी पैदा हुई नहीं होती। पुरुष स्वभाव से घुमक्कड़-खानाबदोश है। और जब तक पुरुष का चल सका, वह घूमता रहा बंजारों को लेकर। उसने बसना नहीं चाहा, उसने एक जगह नहीं बैठना चाहा। वह एक खूंटे पर बंधने को बहुत मुश्किल से राजी हुआ। इस राजी होने में भी नारी की प्रेरणा थी। एक जगह रोक लेने में, एक जगह बस जाने में, घर बना लेने में, एक नागरिक सभ्यता को जन्म देने में नारी मूल है।

मेरे समझने में, मैं जैसा देख पाता हूं, मुझे दिखाई पड़ता है- पुरुष मूलतः घुमक्कड़ है। मूलतः एक जगह रुक जाने का उसका मन नहीं है। नारी एक जगह रुक जाना चाहती है, एक पर रुक जाना चाहती है, एक पर समर्पित हो जाना चाहती हैं क्योंकि समर्पण बार-बार संभव नहीं। समर्पण बार-बार नहीं किया जा सकता है। पुरुष की जो वृत्ति है, उसके भीतर जो मूल वृत्ति है, बदलाहट की, परिवर्तन की, नए-नए क्षेत्र छूने की, नए परिचय, नई प्रीति बनाने की, वह नारी की नहीं है।

पुरुष की इस दौड़ में अगर पुरुष कहता है कि मैं इस दौड़ को जारी रखना चाहता हूं और नारी इस कारण कि पुरुष का अनुकरण करे और वह कहे कि मैं भी इस दौड़ को जारी रखना चाहती हूं तो पुरुष इसमें कहीं भी अहित में पहुंचेगा नहीं। पुरुष की स्वच्छंद वृत्ति को इसमें पूरा मौका भर मिल जाएगा। नारी इससे पतित हो जाने को है और नारी की जो समर्पित होने की एक के प्रति जो पवित्र कल्पना है वह भी नष्ट हो जाएगी। नारी की प्रतिमा नष्ट हो जाएगी।

मेरे देखने में नारी के चित्त पर, उसकी स्मृति पर, एक की प्रीति का अंकन इतना गहरा होता है कि दोबारा दूसरा चित्र उस पर नहीं उभर पाता। एक जीवन में दूसरे चित्र को उभार लेना नारी के लिए असंभव है। यही कारण था कि पिछली सदियों में नारी समर्पित हुई जीवित व्यक्तियों के प्रति भी, मृत व्यक्तियों के साथ भी अपने को समाप्त भी कर लेने के लिए उसने बाधा नहीं मानी। उससे सती की प्रथा का कभी सहज रूप से विकास हुआ। इतने दूर तक कि जिसे जीवित में प्रेम किया, उसके पार अब किसी और को प्रेम करने की क्षमता नारी में नहीं है। जिसे प्रेम किया, उसके समाप्त होने पर उसका सब समाप्त हो जाता है। मेरा देखना, समझना है कि नारी के जीवन में प्रेम इतना परिपूर्ण रूप से घेर लेता है उसे, उसकी श्वास-श्वास को कि उसके प्रेम के पात्र का बदल जाना, या टूट जाना, या मृत हो जाना, उसके समस्त जीवन को कोरा और शून्य कर जाता है।

पुरुष के जीवन में प्रेम एक अंश मात्र है उसके और बहुरंगी जीवन का। और बहुत काम है- उसमें एक काम प्रेम भी है। प्रेम के टूटने या बदलने से उसके जीवन में कोई बहुत बड़ी बदलाहट नहीं आती। एक अंश बदलता है जो कि पूरक है, दूसरी पूर्ति की जा सकती है। नारी के जीवन में प्रेम की बदलाहट, या प्रेमी का मर जाना या मिट जाना या समापृत हो जाना, छूट जाना; उसके पूरे जीवन को रिक्त और शून्य कर जाता है। नारी के लिए प्रेम और अन्य कामों के बीच एक काम नहीं है। नारी के लिए प्रेम सबकुछ है और अन्य कामों में जो अर्थ और प्रयोजन, सार्थकता दिखती है वह प्रेम के कारण दिखती है। प्रेम है तो उसके लिए सब सार्थक है। प्रेम नहीं है तो उसके लिए सब व्यर्थ हो जाता है। उसकी आकांक्षा का आकाश प्रेम से बड़ा नहीं है।

पुरुष की आकांक्षा का आकाश प्रेम से भिन्न, भीतर से भिन्न है। नारी की आकांक्षा का आकाश प्रेम के साथ संयुक्त और एक है। प्रेम और जीवन उसके लिए पर्यायवाची है। इसलिए दोनों के लिए प्रेम की, विवाह की, तलाक की एक-सी, एक से अधिकार और एक-सी सुविधाएं नहीं हो सकती। और जो समाज वैसी सुविधा और व्यवस्था करेगा, वह समाज मूलतः पुरुष के हाथ में खेल रहा है यह जानना चाहिए। यह बात ऊपर से देखने पर ठीक मालूम होती है कि नारी को समान, स्वतंत्र अधिकार, पुरुष जैसा अनुकरण, पुरुष जैसा जीवन उपलब्ध होना चाहिए। इसमें नारी को भी दिख रहा है कि शायद यह ठीक है। शायद उसके पिछले दिनों में दबाए गए अहंकार को इससे प्रोत्साहन मिल रहा है और अहंकार की तृप्ति के लिए वह कुछ ऐसा कर सकती है कि इस बात से राजी हो जाए। लेकिन अगर ठीक से नहीं सोचा गया तो अंततः नारी के संपूर्ण जगत के लिए इससे अहित होने को है।

प्रेम के संबंध में भेद है नारी और पुरुष में, इसलिए प्रेम के संबंध में नियमन में भी भेद होगा। और नारी को यह नहीं सोचना है कि पुरुष के अनुकरण में मुझे अधिकार मिल जाएं। उसे यह सोचना है कि मेरे स्वभाव के अनुकूल अधिकतम विकास की संभावनाएं जिनसे पूर्ण होती हो, वैसे अधिकार मुझे मिलने चाहिए। अगर ऐसे अधिकार नारी को मिलते हैं, विकास की संभावनाएं मिलती हैं कि जो उसके भीतर की नारी को पूर्णता तक ले जाएं, तो चाहे वे अधिकार पुरुष के अधिकारों से भिन्न हों, अलग हों, पृथक हों तो भी नारी के हित में होने को हैं। इस अर्थ में मैंने कहा- समान अधिकार नहीं, अधिकार की समानता का मैं पक्षपाती हूं। पुरुष जैसे अधिकार नहीं, पुरुष के जीवन के विकास के लिए जितने अधिकार मिले हों, उतने ही अधिकार नारी के जीवन के अपने जीवन के विकास के लिए हों।

जैसे उदाहरण के लिए समझ ले सकते हैं- शिक्षा की बात है। नारी को शिक्षा का पुरुष के समान ही अधिकार होना चाहिए। इसका एक अर्थ तो यह हो सकता है कि जैसी शिक्षा पुरुष को मिलती है वैसी नारी को मिलना चाहिए। पुरुष को जैसी शिक्षा मिलती है- गणित की, और विज्ञान की, और मेडिकल साइंस की, और इंजीनियरिंग की, वैसी शिक्षा नारी को भी मिलना चाहिए। पुरुष के समान अधिकार का मायना हुआ कि जैसे पुरुष को शिक्षा का अधिकार है वैसे नारी को शिक्षा का अधिकार, ठीक वैसी ही शिक्षा का। एक अर्थ तो यह हुआ कि यह अधिकार समान हो गए। लेकिन अगर नारी को पुरुष जैसी शिक्षा मिलती है, जैसे गणित की शिक्षा मिलती है, इंजीनियरिंग की शिक्षा मिलती है, डॉक्टरी की शिक्षा मिलती है, विज्ञान के केमिस्ट्री-फिजिक्स और दूसरी चीजों की शिक्षा मिलती है, मेरा ऐसा मानना है कि उससे नारी का अहित होगा। नारी के मूल स्वभाव को यह सारी शिक्षा से चोट पहुंचेगी और कड़ापन आएगा।

मेरा ख्याल है कि ठीक गणित के अध्ययन से गुजरी हुई नारी कुछ कम नारी हो जाएगी- यह बात अजीब-सी मालूम होती है। अजीब-सी इसलिए मालूम होती है कि हम सोचते हैं जिस बात को हम सीखते हैं और शिक्षित होते हैं उसका जीवन पर कोई प्रभाव नहीं होता। हम जो भी पढ़ते हैं, उससे हमारे मस्तिष्क का निर्माण होता है। हमारे सोचने के ढंग और जीवन व्यवहार के ढंग निर्मित होते हैं। और एक लंबे दायरे में अगर 15 या 20 वर्ष कोई इस शिक्षा से कोई गुजरे, तो परिणाम में वह शिक्षा उसको बदला हुआ छोड़ जाएगी। ऐसी नारी जो सूखे गणित और विज्ञान जैसे विषयों से गुजरेगी, परिणाम में पाएगी कि उसमें पुरुष जैसा कुछ उदय हो गया है। यह तो अधिकार समान हुआ। लेकिन अधिकार की समानता का अर्थ मेरे लिए यह है कि नारी के अपने स्नेहपूर्ण व्यक्तित्व, उसके प्रीतिपूर्ण व्यक्तित्व, उसके भावना जगत के अनुकूल उसे शिक्षा मिले। जैसे मैं पाता हूं कि गणित के 20 वर्ष के अध्ययन के बाद नारी की जो स्थिति होगी, संगीत के 20 वर्ष के अध्ययन के बाद उसकी स्थिति दूसरी होगी। मैं यह कभी कल्पित नहीं कर पाता कि एक नारी अगर 20 वर्ष गणित के अध्ययन

से गुजरे तो ठीक वह वैसी ही रहेगी, जैसे 20 वर्ष तक संगीत के अध्ययन से गुजरे तो। मुझे दिखता है कि इन दोनों में अंतर पड़ जाएगा।

'अस्पष्ट आवाज में प्रश्न'

उसकी मैं बात करूंगा। मैं सामान्य नारी की बात कर रहा हूं। व्यक्तिगत एक-एक नारी और उसके फुटकर अपवाद की बात यहां नहीं कर रहा हूं। उसकी बात लेता हूं। ...तो नारी के, सामान्य नारी के शिक्षण में गणित की जगह संगीत हो, इसमें उसके नारीत्व के विकास की ज्यादा संभावना है। सामान्य नारी के शिक्षण में गणित और इंजीनियरिंग की जगह, फिजिक्स और केमिस्ट्री की जगह संगीत हो, नृत्य हो, उसके गृहस्थ, दांपत्य जीवन का शिक्षण हो। बच्चों का, बच्चों के प्रति व्यवहार का, शिक्षण का, पति और गृह के शिक्षण और संबंध का पूरा का पूरा शिक्षण हो। और, उसकी भावना का निर्माण हो, बजाय उसके बौद्धिक मस्तिष्क के।

मनुष्य के भीतर दो बातें हैं- एक उसका मस्तिष्क है, उसके तर्क की शक्ति है, उसकी गणित की प्रतिभा है। एक उसका हृदय है, उसकी भावना है, उसके प्रेम का जगत है। स्त्री के संबंध में मुझे लगता है- उसकी शिक्षा में हृदयगत, प्रधानतः भावनागत क्षमता का विकास होना चाहिए। मैं यह नहीं कहता कि पुरुष को नहीं होना चाहिए भावना का शिक्षण, पुरुष के जगत में भी भावना का शिक्षण होना चाहिए लेकिन वह प्रधान नहीं हो सकता। मैं यह नहीं कहता कि स्त्री को सवाल भी नहीं आने चाहिए करने, गणित भी नहीं आना चाहिए करना, पर मेरा कहना है कि वह बहुत गौण होगा। वह उसकी शिक्षा का बहुत, बहुत ही गौण हिस्सा होगा, उसकी शिक्षा का प्रधान हिस्सा उसके प्रेमपूर्ण व्यक्तित्व के विकास का होगा। पुरुष के भी प्रेमपूर्ण विकास का हिस्सा होगा, लेकिन वह उतना प्रधान नहीं हो सकता है जितना नारी के लिए होना है। पुरुष की बौद्धिक क्षमता के विकास के लिए ज्यादा सुविधा होना चाहिए। अगर इसके विपरीत होगा और मिश्रित शिक्षा होगी... तो परिणाम में मिश्रित शिक्षा का अर्थ यह नहीं होता कि स्त्री और पुरुष दोनों की शिक्षा का मिश्रण। मिश्रित शिक्षा का सीधा अर्थ यह होता है कि पुरुष की शिक्षा में स्त्री का सम्मिलित हो जाना। आज जो भी यह शिक्षा है वो पुरुष की शिक्षा है उसमें स्त्री सम्मिलित होती जा रही है। उसके मस्तिष्क का तो विकास होगा। अगर स्त्री को हमें ठीक वहीं ले जाना है, जहां पुरुष को ले जाना है- यानी कि दुकान में ले जाना है, और बाजार में ले जाना है, और नौकरी में ले जाना है, और मिलिट्री में ले जाना है- तो ठीक है कि जैसे पुरुष को एन.सी.सी. की शिक्षा मिले, सैनिक प्रशिक्षण मिले वैसा स्त्री को भी मिले। तो ठीक है जैसा कि क्लर्क बनने को पुरुष को शिक्षण मिलता है वैसा स्त्री को भी मिल रहा है। तो ठीक है कि जैसा पुरुष को शिक्षण मिलता है व्यापार का, बाजार का, वैसा स्त्री को भी मिले।

लेकिन भारत की कल्पना और रही है। भारत में एक अद्‌भुत श्रम विभाजन किया था। और मेरा मानना है वह श्रम विभाजन ज्यादा मनोवैज्ञानिक है। भारत में विभाजन किया हुआ है, एक स्त्री के लिए एक दायरा और एक सीमा रेखा है और वह सीमा अकारण थोपी नहीं गई है स्त्री पर। वह उसके, उसके प्राकृतिक जीवन और उसके निकटतम विकास के लिए थोपी गई है। उसे दी गई हैं, और उसे देने में उसकी ज्यादा संभावना है कि वह अपने को विकसित कर सके। ज्यादा तृप्त अपने को अनुभव कर सके। अगर स्त्री को ठीक पुरुष के साथ बीच बाजार में प्रतियोगिता में ले आया जाए, जैसा कि पश्चिम में हो रहा है, इसी समान अधिकार का परिणाम कैसा है? उससे हुआ क्या है? उससे स्त्री तृप्त हुई हो? यह तो समझ में पश्चिम में नहीं आया। यानी पश्चिम के बड़े से बड़े विचारक जैसे जॉर्ड या दूसरे जिन्होंने इस मसले पर विचार किया है, वे हैरान हुए हैं पिछले 50 वर्षों के

अनुभव के बाद। स्त्रियों ने काम किया है, वह क्लर्क की तरह काम करती है, वह मिलिट्री में भी काम कर सकती है। पिछले महायुद्ध में... युद्ध में भी पायलट के रूप में उसने काम किए हैं। वो सब उसने किया है, लेकिन करते-करते वह लगभग पुरुष हो जाती है और उसका प्रेम का स्रोत सूखता चला जाता है। सवाल यह नहीं है कि उसका प्रेम का स्रोत सूख जाने से पुरुष का कोई नुकसान हो जाने को है, सवाल यह है कि क्या वह अब ज्यादा मां बनने के योग्य, ज्यादा पत्नी बनने के योग्य, एक गृह का केंद्र बनने के योग्य रह जाएगी? अब जैसे कि सैनिक शिक्षण शुरू हुआ सारी दुनिया में। स्त्रियों को भी समान अधिकार है, इसलिए स्त्रियों को भी सैनिक शिक्षण दिया जाना चाहिए, दिया जा रहा है। मैं यह नहीं देख पाता कि 5 से 6 वर्ष के सैन्य शिक्षण के बाद उसके भीतर की नारी विलीन हो जाएगी, और उसके भीतर एक पुरुष का उदय नहीं होने लगेगा! जो कि उसके पूरे व्यक्तित्व को कुरूप कर देगा।

इसी संबंध में मैं यह भी प्रासंगिक रूप से कह दूं कि मेरा मानना ऐसा है कि प्रत्येक व्यक्ति के भीतर चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, दूसरा विरोधी तत्व मौजूद होता है। प्रत्येक स्त्री के भीतर उसके अचेतन में पुरुष है और प्रत्येक पुरुष के भीतर उसके अचेतन में स्त्री है। अगर स्त्री के शिक्षण को ऐसा बनाया जाए जो पुरुष जैसा है तो उसके चेतन की स्त्री फीकी होती जाती है और उसके अचेतन का पुरुष घना हो जाता है। स्त्री के भीतर जो पुरुष बैठा हुआ है, अगर पुरुष जैसा शिक्षण उसे मिले, तो वह पुरुष धीरे-धीरे प्रधान होता जाता है और फैलता जाता है। और स्त्री के सामान्य, सहज चित्त पर जहां कि स्त्री है, वहां पुरुष के गुण धीरे-धीरे हावी हो जाते हैं। और उसके भीतर द्वंद्व पैदा हो जाता है। और वह द्वंद्व उसे कहां लेकर जाएगा? वह द्वंद्व उसे किस सीमा में पहुंचा देगा और किस विकृति और कुरूपता में ले जाएगा? यह नहीं कहा जा सकता। पश्चिम में जहां अनुभव और प्रयोग हुआ, वहां जो परिणाम आए हैं वे सुखद नहीं हैं। पश्चिम में भी खुद चिंता प्रकट होनी शुरू हुई कि स्त्री को अब हम पुरुष जैसा शिक्षण दें या न दें?

'अस्पष्ट आवाज में प्रश्न'

तो भी मेरा मानना है- युग आर्थिक है, उसकी आर्थिक दिक्कतें हैं। नारी को भी आर्थिक व्यवस्था में पुरुष के साथ सहयोग मे बंधना चाहिए।

'अस्पष्ट आवाज में प्रश्न'

वही मेरा कहना है, समझिए... जो आपने पूछा; वही की वही बात है। मेरा कहना यह है कि कुछ-कुछ दिशाएं हैं। अब तक की मनुष्य की, जो भी आर्थिक दिशाएं हैं, वह सबकी सब पुरुष के लिए निर्मित हैं। मूलतः पुरुष के लिए निर्मित हैं, क्योंकि पुरुष आर्थिक व्यवस्था करता था, नियोजन करता था, इसलिए समस्त आर्थिक दिशाएं पुरुष के लिए निर्मित हैं। अगर ऐसा प्रतीत हो कि आर्थिक युग आया और हमको अब आर्थिक रूप से सोचना और विचार करना है, तो बजाय इसके कि नारी को पुरुष जैसा बनाया जाए, नारी की ही दिशा और सीमा में आर्थिक व्यवस्था देने के प्रयोग करने चाहिए। मेरी बात आप समझ रही हैं न? जैसे मैं मानता हूं कि नारी शिक्षक हो सकती हैं, पुरुष से ज्यादा अच्छी हो सकती है।

पुरुष को शिक्षण का क्षेत्र छोड़ देना चाहिए। जिस सीमा तक भी पुरुष के लिए शिक्षण का क्षेत्र छोड़ा जा सके, वह छोड़ देना चाहिए। बजाय इसके कि नारी सैनिक बने, ज्यादा बेहतर है कि पुरुष जो शिक्षा में है, हटता

हुआ किसी और दिशा में चला जाए। शिक्षा का धीरे-धीरे क्षेत्र प्रायमरी का, हाईस्कूल का और उन विषयों का कॉलेज के अंत तक, जिन विषयों को नारी की सीमा और क्षेत्र में व्यवस्था और मेल बैठ सकता है, समन्वय हो सकता है, वो पुरुष को छोड़ देना चाहिए। अगर पुरुष को सच में लग रहा है कि नारी को स्वतंत्र पैरों पर खड़ा होना है, तो वह पुरुष की तरह खड़े होने की कोशिश न करे। बजाय उसे उसके दायरे और सीमाओं में छोड़ दे। जैसे नर्सरी का है, नर्सिंग का है, बागवानी का है, जिनमें कि नारी का उपयोग हो सकता है, उसकी भावनाओं को कहीं भी चोट न पहुंच जाए, बल्कि उसकी भावनाएं और विकसित हो जाएं। सारे कलात्मक क्षेत्र हैं। अब कलात्मक क्षेत्र आज के युग में 25 रूप लिए हैं, 25 उद्योग हैं, जहां कि कलात्मक अभिरुचि का उपयोग हो सकता है। जहां नारी ज्यादा सहयोगी हो सकती हैं, वह जगह पुरुष को धीरे-धीरे खाली कर देना चाहिए।

यानी मेरा कहना यह है कि आर्थिक क्षेत्र में भी नारी का अपना आर्थिक क्षेत्र निर्मित हो सकता है। पुरुष का अपना हो सकता है। ठीक दोनों एक ही जगह खड़े होकर प्रतियोगिता में उतर जाएं, तो मैं नहीं पाता हूं कि बहुत अर्थ का है। मैं नहीं पाता कि नारी फौज में जाए, मैं नहीं सोचता कि जाना उचित है किसी भी अर्थ में। बहुत-सा क्षेत्र है जो भावनागत है, हृदयगत है, वह नारी के लिए धीरे-धीरे खाली होना चाहिए। अधिकार की समानता में यह बात आनी चाहिए कि जो नारी के क्षेत्र हैं, जहां कि नारी पुरुष से ज्यादा योग्य हो सकती है समाज के लिए भी, वह क्षेत्र नारी के लिए खाली हो जाने चाहिए। बजाय इसके कि हम प्रत्येक क्षेत्र में प्रतियोगिता के लिए खड़े हों, मैं समझता हूं कि क्षेत्र की प्रतियोगिता छोड़कर क्षेत्रों का नियमन ज्यादा लाभप्रद और अर्थकारी हो सकता है।

'अस्पष्ट आवाज में प्रश्न'

सवाल यह है कि आप यह सोचकर चलती हैं शायद कि आप अपनी योग्यता के अनुसार बढ़ती हैं। शायद यह बढ़ना बहुत अंधा होता है। बढ़ना बहुत अंधा होता है। मैं कॉलेज में पाता हूं कि मेरे कॉलेज में लगभग 100 लड़कियां पढ़ती हैं। मैं नहीं जानता कि वह यह सोचकर पढ़ रही हैं कि उनके नारी के विकास का कोई इससे रास्ता बनेगा? यह पढ़ना बहुत अंधा है। गणितज्ञ नहीं बनती नारियां, लेकिन गणित बहुत नारियां पढ़ रही हैं। गणितज्ञ तो नहीं है नारियां, लेकिन गणित बहुत नारियां पढ़ रही हैं। जो नारियां गणित पढ़ रही हैं और गणितज्ञ नहीं बनेंगी, उनके पति के साथ संबंध क्या होंगे और बच्चों के साथ- सवाल यह है। जो नारियां, समझ लीजिए एनसीसी की शिक्षा ले रही हैं। अब मैं नहीं जानता कि उनको ठीक-ठीक इसका पता है कि उनमें योग्यता है इस बात की कि वे सैनिक बन सकें, मैं नहीं जानता। मेरा तो मानना यह है कि शायद ही हजार में एक नारी उपयुक्त होगी, जो सैनिक बनने की क्षमता रखती है और वह नारी न के बराबर नारी होगी। उसके नष्ट होने से कोई नुकसान नहीं होगा, क्योंकि वह अगर नहीं भी सैनिक बनती है, तो भी वह सैनिक रहेगी चाहे घर में रहे। उससे कोई फर्क नहीं पड़ता, वह लड़ेगी, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। वैसी नारी अगर जाती है, तो कोई अंतर नहीं पड़ता। उसमें कोई मायने नहीं है। मेरा सवाल यह है कि उस एक नारी की योग्यता सैनिक की होगी, उसके लिए 999 नारियां भी सैनिक शिक्षण में प्रविष्ट की जाती हैं और उनको शिक्षा दी जाती है समान अधिकार के नाम पर। जैसे कॉलेज में लड़कों का एनसीसी है, तो समान अधिकार के नाम पर स्त्री को भी, महिलाओं को भी एनसीसी है। अगर 50 लड़के एनसीसी में जाते हैं, तो 50 लड़कियां भी एन.सी.सी. में जाती हैं। जितना लड़कों के एनसीसी पर खर्च होगा, उतना लड़कियों के एनसीसी पर भी खर्च होगा। अब ये लड़कियां पुरुष जैसे कपड़े पहनकर, पुरुष जैसी कवायद करके, पुरुष जैसा बंदूक चलाना सीखकर, पुरुष जैसा पूरा का

पूरा दायरा बनाकर 5-6 साल के शिक्षण के बाद जब गृहिणी बनेगी, तो मैं पाता हूं कि यह, यह कुछ कम अर्थों में गृहिणी बन पाएगी, जैसा कि वह बन सकती है।

मेरा कहना यह है कि एक ही दायरे में खड़े होकर प्रतियोगिता की जो बात है, वह गलत है। नारी को दायरे स्पष्ट होने चाहिए, फिर अगर उनमें कोई प्रतिभाशालिनी हो और प्रतिभाशालिनी का मतलब यह है कि अगर अपवादस्वरूप वह किसी दूसरे क्षेत्र में जा सकती है, तो कोई वजह नहीं है, कोई रोकने का कारण नहीं। मैं यह नहीं कहता नारी को रोकने का कोई कारण है। अगर कोई नारी सैनिक ही होने को पैदा हुई है, तो मैं कोई रोकने का कारण नहीं देखता कि उसे इसलिए रोका जाए कि वह नारी है, इसलिए सैनिक नहीं हो सकती। अपवाद स्वीकार किए जा सकते हैं, अपवाद होने चाहिए। लेकिन अपवाद के नाम पर अगर सामूहिक स्वीकृति हो जाए वैसी, तो परिणाम बुरे होते हैं, क्योंकि लोग अंधे की तरह चलते हैं। लोगों को तो पता नहीं है- क्या चुनना है, क्या करना है, क्या योग्यता है? एक दौड़ पैदा होती है समाज में, एक अनुकरण पैदा होता है। अनुकरण पैदा हो गया तो दौड़ चलती जाती है। दौड़ इतनी अंधी होती है कि पता नहीं चलता कि कहां जाकर दौड़ ले जाएगी, किस सीमा पर जाकर दौड़ अंत करेगी? ये पता नहीं चलता।

अभी में जोर्ड की किताब पढ़ता था। जोर्ड ने लिखा है कि पश्चिम ने बहुत विकास किया, लेकिन कुछ बातें खो गईं। जैसे पश्चिम में कोई नारी उस अर्थ में मां नहीं रह गई जैसे कि पूरब में है। मां होना कठिन हो गया है पश्चिम में, क्योंकि बच्चे की जिम्मेदारी बहुत दूसरा अर्थ रखती है। प्रत्येक नारी यह सोचती है कि कल मेरा सुरक्षित है, परसों मेरा सुरक्षित है तो बच्चा होना चाहिए। कल अगर तलाक हो और मेरे पास दो बच्चे हों, तो बाजार में मेरा मूल्य कम होगा, मुझे नया पति ढूंढना कठिन हो जाएगा। अब अगर एक नारी को बाजार के मूल्य से सोचना पड़े कि कल मुझे पति खोजना कठिन हो जाएगा, तो यह नारी बच्चे को, अगर बच्चा इसे हो जाए तो वैसे इसे प्रेम से नहीं देख पाती, जैसे प्रेम से पूरब की नारी देख पाती है। इसको बच्चा एक उपद्रव का कारण बन सकता है। बच्चा होना ही एक अजीब-सी बात है। पश्चिम की कोई नारी बच्चे को दूध नहीं देना चाहती। उसका शरीर शिथिल होगा, कल उसका बाजार में मूल्य कम हो जाएगा। पश्चिम की बहुत-सी नारियां 35 वर्ष की उम्र से आगे नहीं बढ़ती, 45 और 50 वर्ष की उम्र तक वह 35 ही उम्र बताती रहती है, क्योंकि बाजार में मूल्य कम हो जाएगा। बाजार में मूल्य कम होने का मानी यह होता है कि कल अगर यह पति छूटता है, तो दूसरे पति को खोजना बिल्कुल व्यापारिक, व्यावसायिक बात हो गई है।

अब अगर एक पत्नी इस कारण मां बनने से डर रही हो कि बाजार में कल मूल्य कम हो जाएगा तो मैं नहीं समझता कि इसका परिणाम उसमें विकृति होगी या नहीं? वह विकृत हो जाएगी। उसका मस्तिष्क विकृत हो जाएगा, क्योंकि स्वभावतः वह बिना मां बने तृप्त नहीं हो सकती। वह मां इसलिए नहीं बनेगी कि बच्चा होगा, बच्चा होगा तो कल बाजार में मूल्य कम होगा। और इस कारण मां नहीं बनेगी और उसकी जो मूल तृप्ति है वह अतृप्त रह जाएगी मां बनने की। अब अगर एक स्त्री पश्चिम में एक पति को छोड़ती है, दूसरे पति को छोड़ती है, तीसरे पति को छोड़ती है, तो 3-4 पतियों को छोड़ते-छोड़ते विरूप हो जाती है। उसके प्रेम की जो भी सरलता-सहजता है, नष्ट हो जाती है। अब उसमें व्यवसाय हो जाता है, अब उसकी आंख में एक और तरह की बात हो जाती है और उसके मन में भी एक और तरह की कुरूपता हो जाती है जो पूरब में कहीं भी पाई नहीं जाती है। वह कुरूपता उसे पकड़ लेती है, फिर वह नए भी संबंध बनाती है, तो भी वह कुरूपता उसके संबंध में फैलती चली जाती है। सब विषाक्त हो गया है। जोर्ड ने लिखा है कि पश्चिम में अब मकान रह गए हैं, घर नहीं। अब हम घर लौटते हैं, तो जैसा कि पूरब में कोई घर लौटता है... और पत्नी होती है या मां होती है। स्त्रियां पश्चिम में भी हैं, लेकिन पत्नियां या मां नहीं हैं।

घर लौटते हैं, वहां एक स्त्री जरूर मिलती है, लेकिन वह केवल स्त्री और स्त्रियों जैसी स्त्री हैं और बीच में अगर उससे कोई विशेष संबंध है, तो केवल एक लाइसेंस है, जो राज्य ने दिया हुआ है। लाइसेंस कल टूट सकता है, परसों टूट सकता है, अभी टूट सकता है, इसी क्षण टूट सकता है। नारी को समान अधिकार के नाम पर शिक्षा दी, उसको उत्तेजित किया, उसको बढ़ाया, वह टूटती चली गई। मेरा कहना यह है कि- आश्चर्य और मजे की बात यह है कि नारी की तृप्ति को नहीं समझा गया कि उसकी तृप्ति कहां और किस बात में है? मैं आपसे पूछूं, एक नारी दूर प्रतिष्ठा के ओहदों पर पहुंच जाए, एक नारी दूर शिक्षा के जगत में शिक्षा शास्त्री हो जाए, एक नारी बहुत बड़ी वैज्ञानिक हो जाए, लेकिन आप हैरान होंगे- वह बड़ी वैज्ञानिक नारी, वह बड़ी प्रतिष्ठा और पद पर बैठी राजनीतिक नारी, समाज के किसी बड़े पद पर पहुंची हुई नारी, शिक्षा के क्षेत्र में बड़े पद पर पहुंची नारी अगर प्रेम नहीं पा रही है; तो अतृप्त होगी। अकेली वैज्ञानिकता तृप्त नहीं कर सकती और अकेला पद उसे तृप्त नहीं कर सकता है। वह रिक्त और खाली अनुभव करेगी। उसके भीतर कुछ टूटा हुआ होगा, वह भरने की कोशिश करेगी पद से और दौड़ से, लेकिन वह अचानक पाएगी कि सब टूटा हुआ है, सब खाली है। वह उसके स्वभाव के भीतर नहीं है। अथवा स्वभाव ही बदलने की किसी दिन कोई व्यवस्था हो जाए, तब बात अलग! उसके पहले तो यही बात सच है कि वह तृप्ति अनुभव नहीं करती।

आज तक किसी नारी ने अनुभव नहीं किया और यह भी हो सकता है की एक नारी किसी पद पर न हो, किसी बहुत समृद्धि में न हो, किसी बहुत अच्छी आर्थिक स्थिति में न हो, लेकिन कोई एक समर्पित होने को, प्रेम करने को उपलब्ध हो और वह नारी तृप्त हो जाएगी। उसका पूरा का पूरा भीतरी जगत शांति और आनंद से भर जाएगा। उसके भीतर एक संगीत का उदय हो सकता है, एक बिल्कुल सामान्य दरिद्र हालत में भी। और एक नारी असंतुष्ट होगी, अतृप्त होगी--बहुत समृद्ध स्थितियों में भी। नारी मूलतः समर्पित हुए बिना तृप्त नहीं हो सकती।

'अस्पष्ट आवाज में प्रश्न'

यह मैं नहीं कह रहा। मेरी बात अगर समझिएगा तो मैं निषेध की बात ही नहीं कह रहा हूं। मैं यह कह रहा हूं कि नारी के विकास की, अंतर विकास की, उसे अधिकतम, सर्वाधिक सुविधाएं मिलनी चाहिए। समझ लीजिए हम यह कहें कि उसे निषेध कर दिया जाए- कि वह ऐसा नहीं कर सकती और वैसा नहीं कर सकती। असल में सब निषेध, सार्वजनिक विचार से किए जाते हैं, मतलब सबके विचार से किए जाते हैं। अपवाद की गुंजाइश नहीं रखी जाती। मैं एक ऐसे समाज की कल्पना करता हूं जो नियम से कम, सहानुभूति से ज्यादा प्रेरित हो। और बजाय वहां नियमन के, वहां अपवाद के लिए हमेशा संभावना हो। अपवाद के लिए हमेशा संभावना का मायना यह है। मैं यह नहीं कहता किसी भी स्थिति में, किसी भी रूप में कोई नारी किसी पुरुष को न छोड़े। मैं यह नहीं कहता। लेकिन अगर यह नियम हो जाए छोड़ना--बहुत ही सहज और आम बात हो जाए छोड़ना, तो मैं इसके विरोध में हूं। मेरी बात आप समझ रही हैं न? यानी एक तो यह होता है कभी-कभी धीरे-धीरे अपवाद नियम बन जाते हैं। लेकिन ऐसा चलता है कि हमने इसको अपवाद को सोचकर रखा है कि कभी-कभी ऐसी स्थिति होती है, कभी ऐसे कारण होते हैं कि एक नारी पुरुष को छोड़ दे। शायद छोड़ने में ही उसकी समृद्धि होगी, छोड़ने में ही उसको शांति उपलब्ध होगी, यह अपवाद की बात है। अगर इसको हम नियम मान लें तो परिणाम अवसाद-ग्रस्त होगा।

'अस्पष्ट आवाज में प्रश्न'

नहीं, मेरी पूरी बात समझिए। मेरी पूरी बात समझिए। अभी जैसा विवाह है, जो हमारी रूढ़िग्रस्त विवाह की व्यवस्था है, मैं उसको मान्य नहीं कर रहा हूं। मेरा मानना है कि विवाह, प्रेम विवाह होने चाहिए। वह छोड़ने की गुंजाइश बजाय चुनाव के बाद में, चुनाव से पहले होनी चाहिए। वह गुंजाइश बाद में छोड़ने के बजाय, वह विवाह से पूर्व होनी चाहिए। यानी मैं जब विवाह करता हूं, तो बजाय इसके कि मैं मां-बाप के कारण, या अन्य कारणों से सोचकर विवाह करूं, मेरे सारे कारणों में सर्वाधिक कारण मेरा प्रेम होना चाहिए और स्त्री के लिए भी वह अधिकार ऐसा ही होगा कि वह अपने प्रेम के कारण विवाह करे। बजाय इसके कि बाद में बदलने की बहुत सुविधाएं हां और आयोजन हों। ज्यादा योग्य है कि चुनाव के पहले आयोजन और सुविधाएं हों।

हमारी जो व्यवस्था है, वह चुनाव की तो बहुत कम है--अभी जैसा इस मुल्क में है। इसीलिए बाद में हम परिवर्तन की मांग शुरू कर देते हैं। चुनाव की परिपूर्ण स्वतंत्रता होनी चाहिए। और इसमें मैं कोई अंतर नहीं पाता कि स्त्री और पुरुष के लिए कोई अंतर की बात उठती है। चुनाव की परिपूर्ण स्वतंत्रता होनी चाहिए, लेकिन चुनाव के बाद बदलाहट भी अपवाद ही होने चाहिए, नियम नहीं होना चाहिए।

शुरू-शुरू में ऐसे शुरू हुआ था कि तलाक को अपवाद मानकर शुरू किया गया था। बर्ट्रेंड रसल ने लिखा है उन्होंने चार शादियां की। वो प्रमुखतम इस नारी स्वतंत्रता के अधिकार की मांग करने वालों में से एक थे। 1900 के करीब इसके लिए आवाज उठानी शुरू की। उन्होंने खुद चार तलाक किए और चार शादियां की। बजाय इसके कि जब असुविधा हो और कष्टप्रद हो जाए और भारग्रस्त हो जाए, तलाक ऐसा न रहकर धीरे-धीरे सुविधा की व्यवस्था हो जाए। यानी मैंने आपसे कहा कि पुरुष इस बदलाहट में प्रसन्न है। वह चार नहीं, वह आठ नारियां बदल सकता है। इसमें कोई बदलाहट का प्रश्न नहीं है। लेकिन सवाल यह है कि बर्ट्रेंड रसल आज असंतुष्ट नहीं है, अतृप्त नहीं है, चार पत्नियां पाकर वह ज्यादा तृप्त पुरुष हो गए हैं लेकिन उन चार स्त्रियों का क्या हुआ, जिन्हें उन्होंने बदला? उनके एक मित्र ने कहीं लिखा है कि बर्ट्रेंड रसल को पाने के बाद वह स्त्रियां बर्ट्रेंड रसल जैसा आदमी नहीं पा सकीं। अब वे चारों स्त्रियां टूट गई और मृत हो गईं। बर्ट्रेंड रसल जैसा व्यक्तित्व तो नहीं पा सकतीं प्रेम करने को, समर्पित होने को। अब यह क्या है? क्योंकि तलाक देने के लिए नियम है पश्चिम में कि अडल्टरी हो, या व्यभिचार हो, कोई ऐसे कारण हों। जब छूटना है तो झूठे व्यभिचार के इल्जाम लगा के अदालत में झूठे मुकदमे चलते हैं और सब नष्ट होते हैं। अब जिन चार नारियों को बर्ट्रेंड रसल ने जिस कारण छोड़ा, कि जिनके ऊपर व्यभिचार के आरोप लगाए, उन चार नारियों की सामाजिक-मानसिक दोनों स्थितियां टूट गईं। मेरा कहना है चुनाव के पूर्व स्वतंत्रता होनी चाहिए और चुनाव के बाद स्वतंत्रता कम से कम हो जानी चाहिए। चुनाव के पूर्व स्वतंत्रता होनी चाहिए।

प्रश्न : दोनों के लिए?

हां, दोनों के लिए, वह तो सवाल ही नहीं है। वह तो सवाल ही नहीं है।

वह सवाल ही नहीं है- दोनों और एक का। उस भाषा में सोचेंगे तो फिर नारी मुक्त नहीं हो पाती नारी से, पुरुष पुरुष से मुक्त नहीं हो पाता। उस भाषा में सोचने की आदत गलत होती जा रही है। उसमें प्रतिक्रिया भर रह गई है। उसमें आप यूं सोचती हैं जैसे एक नारी सोच रही है। मसले को सोचिए... थोड़ी देर के लिए

भूलिए कि नारी है या पुरुष है? मसले को सोचिए, समस्या को समझिए। नारी और पुरुष होने का भाव छोड़ दीजिए तो आप शायद ज्यादा सही निष्कर्ष के करीब पहुंच सकती हैं। हम जैसा सोचते हैं- या तो पुरुष हूं मैं या नारी हूं मैं। और मैं उस तरह सोचना शुरू कर देता हूं, और तब मैं जो भी करूंगा वह प्रतिक्रिया होगी। अंत में वह निष्कर्ष ऐसे होंगे जैसे नारी ने चाहे, पुरुष के निष्कर्ष ऐसे होंगे जैसे पुरुष ने चाहे। और आज जो इस संबंध में सोचने का सबसे बड़ा अभाव है, वह कुल इसीलिए है कि कोई नारी पुरुष से मुक्त होकर सोचने को राजी नहीं है। मैं नहीं समझ पाता! यानी मैं जब सोचता हूं, उस मसले पर तो मैं जैसे अलग हो जाता हूं, मुझे कोई माने नहीं रह जाता कि मैं कहां खड़ा होता हूं, किस वर्ग में खड़ा होता हूं। मेरे लिए मसला रह जाता है। कि यह मसला है और यह मसला वैज्ञानिक रूप से किस सीमा तक हल हो जाए, उस सीमा तक हल होना चाहिए। उसमें मैं कहां खड़ा होता हूं, मेरे हित सुरक्षित होंगे या नहीं, यह बात अगर मेरे भीतर आ जाए... तब तो मेरा सोचना, मेरे लिए मुक्त रूप से सोचना संभव नहीं रह जाता।

तो यह ठीक है कि दोनों को विकास की और अपनी समृद्धि तक, अपनी पूर्णता तक जाने की स्वतंत्रता होनी चाहिए। और दोनों को समानता होनी चाहिए इस अधिकार की। फिर तो ठीक है, दोनों के लिए बात आ जाती है कि नारी चुनकर व्यवस्थापन करे। खूब चुने, देर से चुने; कोई फिक्र नहीं, लेकिन जब वह किसी के प्रति समर्पित होने की हालात में आ जाए, तो चुने। इस समर्पण के बाद उसके जीवन में ना के बराबर संभावना होनी चाहिए नियमों की, जिनसे ये समर्पण टूटता हो, क्योंकि मेरा कहना यह है कि पुरुष को लाभ है कि यह समर्पण टूटे। मेरा कहना यह है कि समान अधिकार कहां गड़बड़ हालत में पहुंच जाते हैं। पुरुष को इसमें शायद लाभ है कि कल, चार साल बाद, दो साल बाद नारी से मुक्त होने की सुविधा और व्यवस्था हो।

'अस्पष्ट आवाज में प्रश्न'

एकांगी मैं नहीं कह रहा। मेरा कहना यह है कि पुरुष की मनःस्थिति थोड़ी-सी परिवर्तन की, थोड़े-से भटकने की है। यह जो भटकने की मनःस्थिति है पुरुष की, यह तीव्र हो जाती है अगर नारी की तरफ से रोकने की कोशिश हो। अगर इसका दमन किया जाए नारी की तरफ से तो यह तीव्रतर होती जाती है। जितना नारी इसको रोकने की कोशिश करेगी, यह तीव्रतर होने लगती है।

तो मैं एक ऐसे समाज की कल्पना करता हूं, जहां पत्नी और पुरुष के अलावा भी मैत्री के संबंध की सुविधा हो। अभी आज का हमारा समाज है वहां स्त्री-पुरुष के बीच मैत्री जैसी कोई चीज ही नहीं है। यहां स्त्री और पुरुष के बीच कोई संबंध होना चाहिए कोई। चाहे वह मां हो, वह बहन हो, वह पत्नी हो। मैत्री जैसी कोई चीज ही नहीं है। मैं यह नहीं कह सकता कि फलां स्त्री से मेरी मैत्री है। मैत्री जैसी कोई चीज नहीं है इस मुल्क में। यानी संबंध के अतिरिक्त मैत्री की कोई गुंजाइश ही नहीं है।

मेरा मानना है कि अच्छा जगत बनना शुरू होगा, तो... अभी सब संबंध सेक्स के हैं, चाहे वह संबंध मां का हो, चाहे पुत्री का हो, चाहे बहन का हो, चाहे पत्नी का हो, वो कहीं ना कहीं जन्म से संबंधित है। जन्म के घेरे के बाहर मैत्री की, सौहार्द की, प्रीति की, मिलन की व्यवस्था होनी चाहिए। जितनी यह व्यवस्था होगी, पुरुष एक नारी के पास अधिकतम रूप से रह पाएगा। और जितनी यह नारी समझेगी पुरुष की मनःस्थिति को और एक ऐसा समाज होगा जिसमें नारी के एक के प्रति समर्पण होने की व्यवस्था हो और पुरुष की अधिकतम के प्रति मैत्री की संभावना हो... उतना पुरुष भटकन से बच जाएगा और उतना नारी भटकन से बच जाएगी; क्योंकि ये दोनों विरोधी हैं।

‘अस्पष्ट आवाज में प्रश्न’

मैं जो कह रहा था, कुछ और बात कह रहा था। मैं कह रहा था कि मैं एक ऐसे समाज की कल्पना करता हूं, जहां नियंत्रण और दमन नाम की कोई चीज न हो। मेरा ख्याल है कि पुरुष का जो आकर्षण है अपनी पत्नी के अतिरिक्त अन्य स्त्रियों के प्रति, वह उसके पुरुष होने के कारण नहीं है पूरा, बहुत बड़ा हिस्सा उसका सेक्स के संबंध में, काम के संबंध में दमित की गई वासनाओं का है। उसने दमन किया और दमन की पूरी हमारी नीति है। अभी हम काम-वासना के पूरे शास्त्र से परिचित भी नहीं है, न हम किसी को परिचित कराते हैं। न हम अपनी नारी को न अपने पुरुष को कोई शिक्षण देते हैं। जीवन का जो शायद सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग है और जिसकी धूरी पर पूरा का पूरा चित्त पुरुष और स्त्री का घूमता है, वह बिल्कुल ही अज्ञान में चलता है। यानी एक व्यक्ति पूरे जीवन जीता है- पत्नी होगी, बच्चे होंगे, प्रेम करेगा, लेकिन कामशास्त्र से परिचित नहीं होगा। वह जानता नहीं है कि बात क्या है? एक अपरिचय और एक पर्दा और एक गुप्त भाव उसे घेरे रहता है। जितना इस पर पर्दा होगा, उतना ही आकर्षण गहरा होता चला जाता है। निषिद्ध के प्रति एक गहरा आकर्षण होता चला जाता है।

मैं जैसे समाज की कल्पना करता हूं उसमें स्त्री और पुरुष के संबंध सहज हैं, स्वाभाविक हैं। मेरे मन में कहीं भी उनके प्रति पाप का भाव नहीं है, मेरे मन में यह भी समझ में नहीं आता कि उनमें कहीं कुछ बुरा है। मेरे मन में कहीं भी समझ में नहीं आता कि जो प्राकृतिक है, उसमें कुछ भी बुरा और अनैतिक और ‘न’ कहने जैसा है। मुझे लगता है कि प्रत्येक लड़की को और प्रत्येक लड़के को बहुत सहज रूप से यह जो निषिद्ध वातावरण है, इससे मुक्त हो जाना है। इसकी व्यवस्था करनी चाहिए। और सेक्स के संबंध में, काम-वासना के संबंध में, शरीर के संबंध में, शरीर के पूरे नियमों के संबंध में उसे सारा का सारा ज्ञान, सारी जानकारी होनी चाहिए। उसे यह सब शिक्षा, सब ज्ञान होना चाहिए, उसे सब जानना चाहिए। इसके पहले कि एक पुरुष और एक नारी संयुक्त हो, उन्हें पूरे कामशास्त्र के बाबद सबकुछ ज्ञात होना चाहिए और यह ज्ञान इतना सहज होना चाहिए कि इसमें कहीं भी निषिद्ध वातावरण न हो। इसके प्रति जो बहुत गहरा आकर्षण है, वह 90 प्रतिशत से ऊपर विलीन हो जाने को है। अभी तो हमारी सब नीति उस पर आकर्षण पैदा करवा देती है। और उल्टा--जितना निषेध करते चले गए हैं पिछले तीन-चार हजार वर्षों में उतना आकर्षण घना होता चला गया है। इतना 3000 वर्ष पहले नहीं था।

‘अस्पष्ट आवाज में प्रश्न’

हां, वहां एक प्रयोग हुआ है। वहां एक प्रयोग हुआ है और उसके बहुत अच्छे परिणाम हुए हैं। उस प्रयोग के अच्छे परिणाम हुए हैं कि सेक्स के प्रति जो एक निष्िद्ध हवा है, एक बंद-बंद, कुंद-कुंद, सब कुंठित हो गया है, उसे वे मुक्त कर रहे हैं। उन्होंने एक अच्छा प्रयोग किया है। उस प्रयोग के लाभ भारत को और ज्यादा हो सकते हैं। जो बातें मैं कह रहा हूं उनके संदर्भ में यदि वे प्रयोग हों। और हमें निषेध की हवा हटा देनी चाहिए। छोटे-छोटे बच्चे भी यदि पूछते हैं तो बचपन से निषेध शुरू हो जाता है। यदि वे पूछते हैं कि बच्चे कहां से आते हैं? तो हम घबराते हैं बताने में। हम घबराते हैं कि कोई ऐसी बात है जो पाप की है, जबकि मैं नहीं समझता कि उसमें कहीं कुछ भी पाप हो सकता है। यह एक यांत्रिक बात है, उसे सहज भाव से कहना चाहिए। आने वाला समाज जितना स्वस्थ होता जाएगा, उतना उसे सहज बताना चाहिए- बच्चे कैसे आते हैं? क्या होता है? यह

सारी की सारी शिक्षा बच्चे से प्रारंभ होनी चाहिए। उसे कभी भी एक क्षण के लिए भी ख्याल नहीं आना चाहिए कि सेक्स एक निषिद्ध बात है, कोई बुरी बात है या कोई पाप है। जानना चाहिए कि शरीर के जैसे और नियम है, वैसा यह भी एक नियम है। और वह प्रकृति के संतति को आगे चलाए रखने की व्यवस्था है। यह जितना प्रकट होगा और जितना सहज होगा, उतना पाएंगे कि आकर्षण विलीन होता जा रहा है। और पति के अतिरिक्त स्त्री को भी पुरुष-मैत्री के मौके होने चाहिए, पुरुष को भी पत्नी के अतिरिक्त स्त्री-मैत्री के मौके होने चाहिए। और जितने ये मौके गहरे होंगे और जितने बचपन से होंगे, उतना ही आकर्षण कम होता चला जाएगा; सहज हो जाएगा।

जितना निषिद्ध आदमी होगा--जैसे एक साधु है, जो निषेध कर रहा है, वो स्त्री को देख ले तो इतना उसके लिए काम उद्रेक के लिए काफी होगा। वह एकांत में स्त्री के साथ बैठ जाए, तो इतना उसमें उत्तेजना को जगह देने के लिए पर्याप्त है। लेकिन जो व्यक्ति सहज स्त्रियों के करीब है और निकट है और उनके बीच में है, उसके स्त्री के निकट होने से उद्रेक होने की बात नहीं है। वह जितना दमित किए होगा वासना को, उतनी वासना तीव्रता से प्रतिक्रिया करती है। तो हमारे समाज में जो एक कुत्सित आकर्षण पैदा हुआ है, उसका कुल कारण निषेध है, अज्ञान है। निषेध विसर्जित होना चाहिए मेरी दृष्टि में, निषेध समाप्त होना चाहिए। कामवासना जीवन की सहज वासना होनी चाहिए और उसके प्रति जो पाप का बोध पैदा किया है धर्मों ने और तथाकथित संतों और साधुओं ने, वह सब गलत और भ्रान्त, और अवैज्ञानिक है। उसके कोई मायने नहीं है। अब भी पैदा किए चले जा रहे हैं।

अब भी उसे पैदा किए चले जा रहे हैं इसी आशा में कि उससे कुछ मिटता है। उससे कुछ मिटता नहीं है, बल्कि और कैंसर पैदा हो जाता है चित्त में। और वह मवाद देने लगता है, पूरा समाज सड़ता है और गंदगी पैदा होने लगती है। एक मुक्त समाज में काम-वासना एक बहुत सहज चर्चित और स्वीकृत बात होगी। स्त्री-पुरुष के संबंध वैसे ही सहज होंगे, जैसे पुरुष-पुरुष और स्त्री-स्त्री के संबंध होते हैं। जितना यह मुक्त होता चला जाएगा उतना जो भागने की आपने बात कही पुरुष की, कुछ क्षीणतर होती चली जाएगी, वह विदा होती चली जाएगी।

'अस्पष्ट आवाज में प्रश्न'

हां, मैं तो मानता हूं 3000 वर्ष पूर्व हम सेक्स के संबंध में जितना स्वस्थ थे, उतने आज नहीं है। और बहुत-सी बातों में हम आगे गए हैं, लेकिन कुछ बातों में हम अस्वस्थ हो गए हैं। सेक्स के संबंध में हम 3000 वर्ष पूर्व ज्यादा स्वस्थ थे, बहुत स्वस्थ थे। कोई मसला खड़ा नहीं हुआ था, कोई परेशानी, उलझन नहीं आई थी, बहुत सहज बात थी। बिल्कुल इतनी सहज बात थी कि आज हमें ऐसा लगता है कि कैसे अजीब से लोग रहे होंगे...! लेकिन शायद हमें ख्याल भी नहीं आता। लेकिन एक दिन यह ख्याल आना चाहिए कि इतना स्वास्थ्य वापस होना चाहिए। यह स्वास्थ्य वापस हो जाए, चुनाव की सहज स्वतंत्रता, समर्पण की सहज स्वतंत्रता और अधिकतम समर्पण होने की संभावना निर्मित हो, तो मैं मानता हूं और उसके बाद स्त्री को अपने सीमा में विकास के पूरे मौके और पुरुष को अपनी सीमा में विकास के पूरे मौके, इन सबके सम्मिलन से जो समाज, और गृहस्थी, और दांपत्य बनेगा, वह सुखदतम होगा। ऐसा मेरा मानना है।

और अब तक हमारी जो भी धारणाएं हैं वह बहुत कुंठित धारणाएं हैं। और उन कुंठित धारणाओं के कारण हम जो निष्कर्ष भी लेते हैं, वह भी बहुत गलत होते चले जाते हैं। ऐसे समाज की पार्श्व भूमि में मेरी बात

का अर्थ हो सकता है। मैं यह जरूर जानता हूं कि एक दिन, आज या कल हो जाने वाली बात नहीं हो सकती। शायद इस कुंठित और दमन करने के लिए तीन-तीन चार-चार हजार वर्ष तक नैतिक शिक्षकों की जरूरत पड़ी है। शायद हजार दो हजार वर्ष ऐसे नैतिक शिक्षकों की जरूरत होगी जो कहे कि यह पाप नहीं, यह सहज है। जो कहें कि जो भी प्राकृतिक है, उसमें पाप कैसे हो सकता है? और जो इसको सहज सामान्य बातचीत की धारा का अंग बना ले। तो शायद हजार-दो हजार वर्ष में स्वस्थ मानसिक स्थिति पैदा हो जाए।

मेरा देखना यह है कि कामवासना सबसे बड़े अस्वास्थ्य का केंद्र है आज। और शायद उससे कुंठित-पीड़ित लोगों की जो संख्या है वह सर्वाधिक है। और उसके परिणाम में जो मानसिक विकृति और पागलपन और विक्षिप्तता आती है, उसका कोई अंत नहीं है। और इस सबके बावजूद जो स्वस्थ दिखता है सामान्य नागरिक स्त्री या पुरुष, वह भी कैसे कुंठित और विकृत होता है उसके लिए थोड़ा भी समाज को देखने की कोशिश करें, उनको भी देखा जा सकता है। यानी बाहर कुछ दिखता है और फिर पर्दे के भीतर कुछ और चलता है।

'अस्पष्ट आवाज में प्रश्न'

मेरा शिक्षा के संबंध में बहुत बुनियादी, अलग ख्याल है। मेरा मानना है कि अब ऐसी शिक्षा होनी चाहिए जो अभी नहीं है। पुरुष के लिए भिन्न होना चाहिए। मस्तिष्क के विकास के साथ-साथ भावना के विकास के लिए भी शिक्षण होना चाहिए। उसके लिए चाहे गौण होगा वह, लेकिन होना अनिवार्य है। उसके पूरे शिक्षण में एक बहुत बड़ा अंग उसके भावना के विकास का होना चाहिए, सहानुभूति का होना चाहिए। जितना वह भावना के विकास में शिक्षित होगा उतना ही उसके और नारी के बीच में संबंध घने होने लगेंगे। यानी उतना ही वह इस योग्य होगा कि समर्पण को स्वीकार कर सके, उतना ही वो योग्य होगा कि अपने को पूरा किसी को दे सके और किसी को अपना हो जाने दे। और इस पूरी सहानुभूति की भावना के शिक्षण के माध्यम से उसमें एक योग्यता और क्षमता बननी शुरू होगी कि वह क्षुद्रतर परिवर्तन के प्रति कम से कम आकर्षित होने लगेगा और ज्यादा अस्थायी आकर्षण उसके अंग बनने लगेंगे।

आधुनिक शिक्षा उसके विपरीत ले जाती है। यानी उसका एक तो मूल स्वभाव ही उच्छृंखल है। दूसरा, शिक्षा उच्छृंखलता की तरफ उसे पूरा का पूरा मौका देती है। आधुनिक विचार और आधुनिक ख्याल भी उसे और मौके दे देते हैं। यानी उसके भीतर कुछ अस्वस्थ है, उसे और अस्वस्थ होने के लिए मौके मिल जाते हैं। लेकिन सवाल उसके भी शिक्षण के परिवर्तित होने का है। उसके लिए भी भावना प्रवण शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए। उसको भी हम अभी अच्छा नागरिक तो बनाते नहीं, अभी हम पति-पत्नी नहीं बनाते हैं, अभी तो न मालूम हम क्या बनाते हैं उसे शिक्षण से। हम सिर्फ अभी शिक्षण में एक आर्थिक आयोजना भर करते हैं। बस, आर्थिक रूप से व्यक्ति को योग्य बनाते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं बनाते। इसके अतिरिक्त व्यक्ति वैसा ही होता है जैसा होता है।

मैं पढ़कर निकला तो पूरे पढ़ने के बाद यह नहीं समझ पाया कि मुझे अच्छा आदमी बनाने के लिए क्या किया गया? मुझे अच्छा भाई या बहन या पति या पिता बनाने के लिए क्या किया गया है? मुझे समझ में नहीं आ रहा कि सारा शिक्षण इस संबंध में कुछ करता ही नहीं है। तो अभी हमारा शिक्षण सर्वांगीण नहीं कहा जा सकता। वह बहुत ही है एकांगी, आर्थिक भर है। शिक्षण सर्वांगीण हो तो उसमें निश्चित ही पुरुष में एक सहानुभूति और प्रीति भाव नैदा होने के अवसर हों। और उसके मनोविकास और भावना के विकास के पूरे-पूरे

मौके होने चाहिए। वो मौके जितने घने होते जाएंगे, उतना ही उसकी जो विकृति है नारी के संबंध में, वो कम होती जाएगी।

'अस्पष्ट आवाज में प्रश्न'

उसमें कई बातें हैं। अलग-अलग मामले होंगे और अलग-अलग बातें होंगी, लेकिन कुछ बातें निश्चित हैं। अभी तक मुश्किलयह है कि जो सारे मसले हमारे दिमाग में हैं और उनके संबंध में जो विचार हैं, सभी मुझे गलत मालूम होते हैं। यह भी एक समस्या है। अभी हम ठीक से यह भी नहीं समझ पाते कि सामान्य जीवन में कि प्रेम क्या है? हम यह नहीं समझ पाते कि हम चुनाव कर रहे हैं तो किस बात का चुनाव कर रहे हैं? अगर हम ठीक से काम शास्त्र, प्रेम और भावना का शिक्षण देंगे, तो 20-22 वर्ष, 25 वर्ष की उम्र पूरे होते-होते एक व्यक्ति में सहजबोध और अंतर्प्रज्ञा उदय होनी शुरू होगी, जिसके माध्यम से वह जान सकेगा कि क्या प्रेम है? क्या वासना है? क्या कुल जमा वासना पर आधारित है जो, वह जो आप जिस भूल की बात कह रही हैं कि एक नारी पुरुष के प्रति समर्पित होती है और कल वह पाती है कि वह पुरुष उसके प्रति जरा भी समर्पित नहीं है। क्योंकि वह नारी यही फर्क नहीं कर पाती कि वासना कहां है और प्रेम कहां है? उसको कोई योग्यता, ऐसा शिक्षण भी नहीं है, और उसकी कोई योग्यता इस संबंध में विकसित भी नहीं की जाती है। न पुरुष ही ठीक से समझ पाता है कि वह जो कर रहा है--वह वासना है, या वह प्रेम है? 25 वर्ष की उम्र के पहले सुशिक्षित रूप से प्रेम और वासना, और उस सबका पूरा का पूरा ज्ञान होगा; और बहुत संबंध होंगे स्त्री और पुरुष के बीच- इतने अंतर्संबंध होंगे, इतनी निकटता होगी तो उस उम्र तक पहुंचते-पहुंचते वह अपने योग्य साथी को चुन पाएगा।

'अस्पष्ट आवाज में प्रश्न'

इसके अतिरिक्त और भी तो बहुत-सी बातें है न! नहीं तो उसके अतिरिक्त उनकी जो बातें हैं, उन सबके विरोध में नहीं हूं। सवाल यह है कि कुछ लोग तो पूरे पूरब के पक्ष में हैं और कुछ लोग पूरे पश्चिम के पक्ष में हैं। मैं उन दोनों में से नहीं हूं। मेरी थोड़ी तकलीफ है। मैं पाता हूं कि पश्चिम में कुछ गजब के प्रयोग हुए हैं, वे स्वीकार के योग्य हैं। मैं पाता हूं पूर्व में कुछ गजब के प्रयोग हुए हैं, वे भी स्वीकार के योग्य हैं। जो नया जगत बनेगा और नया समाज बनेगा पूरब-पश्चिम के बीच चुनाव से नहीं बनेगा। वह पूरब-पश्चिम में जो भी श्रेष्ठतम होगा, उससे बनेगा। इस बात को मैं समझता हूं।

बर्ट्रेंड रसल ने जो चार तलाक दिए, मैं उनसे सहमत नहीं हूं। बर्ट्रेंड रसल ने चार स्त्रियां बदलीं, उससे मैं सहमत नहीं हूं। लेकिन बर्ट्रेंड रसल की इस बात से सहमत हूं कि वह अपने बच्चों को बचपन से सेक्स की पूरी शिक्षा देते रहे हैं। जरा-भी हिचक और संकोच के बिना देते रहे। और उनका मानना है कि प्रत्येक बच्चे को अगर मैं ठीक पिता हूं तो उसके जीवन के सब संबंधों के प्रति योग्य बना जाऊंगा। इससे मैं सहमत हूं। अब, केवल इस कारण कि बर्ट्रेंड रसल ने चार तलाक दिया, इसलिए मैं चुकता बर्ट्रेंड रसल को अस्वीकार कर दूं, तो नासमझी हो जाएगी।

पश्चिम में जो हुआ है, जिस पृष्ठभूमि में उसमें कुछ तो बहुत श्रेष्ठतर है। वह जो श्रेष्ठतर है वह कैसे हमारे भीतर जो श्रेष्ठतर हुआ है उससे संयुक्त हो सकता है--यह भी ख्याल रखना है। तो यह मेरा मानना है वहां एक स्वतंत्रता आई है लेकिन स्वतंत्रता के साथ और सेक्स मुक्ति के साथ सेक्स के अध्ययन और विचार के साथ जो

और दूसरी चीजें वहां विकसित हुई हैं, उन सबने विकृत कर दिया है। वे अगर विकसित न हों, जैसे कि मैं भारत को देखता हूं कि 3000 वर्ष पीछे लौट चलें तो भारत में एक सहज भाव था।

'अस्पष्ट आवाज में प्रश्न'

छोड़ दीजिए कि आप किस वर्ग में खड़े हैं। इसको थोड़ा छोड़ ही दीजिए। जैसे हम बिल्कुल अपरिचित, अजनबी हैं और पुरुष और नारी का जो मसला है, उस पर अपने बावजूद हम विचार कर रहे हैं। अगर मैं नारी की तरफ से खड़े होकर विचार करने लगूं तो मैं अनजाने में एक पक्षग्रस्त हो जाऊंगा। तब मेरी पूरी कोशिश यह होगी कि नारी के पक्ष में सब उपलब्ध हो जाए और नारी के पक्ष में जो-जो पुरुष में परिवर्तन होने चाहिए, वह सब हो जाएं। और अगर मैं पुरुष की तरफ से सोचने लगा, तो मैं यह पाऊंगा कि पुरुष के पक्ष में सब उपलब्ध हो जाए और पुरुष के पक्ष में नारी में जो-जो परिवर्तन होने चाहिए, वह सब हो जाएं। उससे हम जिस नतीजे पर पर पहुंचेंगे, वह नतीजे पक्षपात ग्रस्त हो जाएंगे। और आज जितने नतीजे हैं वे सब पक्षपात ग्रस्त इसीलिए हैं कि ऐसा एक भी व्यक्ति दुनिया में ऐसा केंद्र खड़ा नहीं कर रहा विचार का, जो कि मुक्त हो पक्षपात से, और स्वतंत्र चिंतन कर रहा हो। नारी और पुरुष का मसला जिसके लिए एक वैज्ञानिक मसला हो और जो खुद कहीं खड़े होकर नहीं सोच रहा हो।

मैं जरूर हैरान हुआ हूं। मेरे मन में जरा भी... मुझे ना मालूम कुछ अजीब भी लगता है, मेरे मन में ख्याल नहीं आता कि मैं इस पक्ष पर खड़े होकर सोचूं या उस पक्ष में? मैं सोचना भी चाहूं तो नहीं सोच पाता। इसलिए जितना आसान दूसरों के लिए सोचना होता है उतना आसान भी मेरे लिए नहीं है। यानी आप बात समझ रहे हैं न! एक पक्ष पर खड़े होकर सोचना बहुत आसान है क्योंकि हमें दूसरे पक्ष से कोई मतलब नहीं। हम सीधी-सीधी रेखा निर्धारित कर सकते हैं कि ऐसा-ऐसा होना चाहिए। दूसरे पक्ष वाले को भी सोचने में कठिनाई नहीं आती।

मुझे सोचने में बहुत कठिनाई है, बहुत जटिलता है--क्योंकि मेरे लिए मसला दोनों तरफ से उलझा हुआ है। और मैं यह देखता हूं कि परिणाम में अंततः नारी और पुरुष के संबंध हैं, वे श्रेष्ठतर कैसे हो जाएं? यह मेरे लिए सवाल है। मेरे लिए यह सवाल नहीं है कि नारी श्रेष्ठतर हो जाएगी या पुरुष श्रेष्ठतर हो जाएगा। इन दोनों के मिलन से जो जगत और समाज बनता है, वह दोनों का मिलन कैसे व्यवस्थित हो ताकि श्रेष्ठतम परिणाम उपलब्ध हो सके--वह विचारणीय होगा तो आप ऐसा नहीं सोचेंगे कि पुरुष को ऐसा हो, स्त्री को ऐसा हो। तब आप ऐसा सोच पाएंगे कि दोनों के बीच क्या हो कि दोनों सर्वाधिक तृप्ति के करीब पहुंच सकें और दोनों से जो सम्मिलित दांपत्य जगत बनता है वह अधिकतम आनंदपूर्ण हो।

उस भाव से सोचिए। पक्ष का बिल्कुल ख्याल ही छोड़ दीजिए। और न केवल इस मसले के संबंध में ऐसा सोचिए और भी जिन मसलों पर सोचना हो कभी, तो उनमें पक्ष का ख्याल छोड़ दीजिए। निष्पक्ष खड़ा होना थोड़ा-सा कठिन होता है। पक्ष इतने स्वाभाविक होते हैं मन में! और नारी के मन में और भी ज्यादा होना स्वाभाविक हैं क्योंकि पिछले 3000 वर्षों से सोचने का मौका ही नहीं मिला और लगभग वह दमित हालत में रही है। उसके लिए और भी स्वाभाविक है कि अपने पक्ष से मुक्त न हो पाए; वह ठीक है।

'अस्पष्ट आवाज में प्रश्न'

अगर वह अब भी नारी की तरह सोचती चली गई, तो असंतोष से बाहर नहीं हो सकती। अब भी उसको नारी से थोड़ा मुक्त होकर सोचने की जरूरत है। और एक बात है असंतोष के बारे में कि केवल पुरुष और नारी के संबंध की बात नहीं है। नारी की असंतुष्ट होने की क्षमता पुरुष से ज्यादा है। यानी अगर पुरुष और नारी के बीच कोई घटना घट गई तो उस घटना में पुरुष के असंतुष्ट होने की क्षमता बहुत कम है, नारी की बहुत ज्यादा है। अन्य दूसरे कारणों के अतिरिक्त यह बहुत बड़ा कारण है।

'अस्पष्ट आवाज में प्रश्न'

उसके लिए भी शिक्षण। अब देखो... यह सोचो न! यह मुश्किल होता कि इतना पुरुष के लिए कहा--तो पुरुष के लिए जो स्वाभाविक है वह विकृत दिखेगा नारी को। जैसे पुरुष के लिए स्वाभाविक है कि स्त्रियां बदल ले, तो इस पर तो नियमन होना चाहिए। पुरुष का नारी के लिए जो स्वाभाविक है, उस पर कोई नियम नहीं। नारी की तरफ से सोचने से यह दिक्कत होती है- समझी न तुम?

इतनी देर से कोई नहीं बोला नारियों की तरफ से कि पुरुष के लिए स्वाभाविक है कि वह नारियां बदल ले, अगर उसके स्वभाव को पूरा विकास का मौका दिया जाए तो उसका मानी यह है कि उसे नारी के साथ स्थायी होने के कोई मायने नहीं हैं। लेकिन कोई नारी इस पर नहीं विचार करेगी कि पुरुष के लिए यदि यह स्वाभाविक है तो उसके लिए कोई व्यवस्था हो, कि उसके स्वभाव की तरफ होने की क्या व्यवस्था होनी चाहिए? कोई नारी पूरे मुल्क में घूमने पर, यह नहीं पूछेगी कि स्वभाव की तृप्ति के लिए क्या होना चाहिए? लेकिन अगर मैं यह कहूं कि नारी के स्वभाव में अतृप्त असंतुष्ट होने की ज्यादा क्षमता है तो नारी को यह लगेगा कि इसका मायने यह है कि वह तो हमारा स्वभाव है!

नहीं। हमारे-तुम्हारे के सोचने का ढंग मेरे हिसाब से गलत है। यानी... यह क्यों सोचते हैं कि हमारा स्वभाव है और तुम्हारा स्वभाव नहीं है। सवाल यह नहीं है कि असंतोष की क्षमता नारी की ज्यादा है तो कैसी भी व्यवस्था में वह ज्यादा असंतुष्ट होने की कोशिश करेगी। जो स्वभाविक है उसका मानी यह नहीं होता कि जो स्वाभाविक है, वह श्रेष्ठ भी है। स्वाभाविक का कुल मतलब यह होता है कि उसके स्वभाव का अंग है। लेकिन पूरी व्यवस्थापन, पूरे शिक्षण, पूरी जानकारी, पूरी समझ के विकास होने पर; मेरा कहना यह है कि यदि एक घटना घटे तो पुरुष के लिए वही घटना और स्त्री के लिए वही घटना समान नहीं है। स्त्री इसमें कहीं ज्यादा असंतुष्ट हो जाएगी और उसके होने का कारण स्वाभाविक इसलिए कह रहा हूं कि उसका दायरा बहुत सीमित है। उस छोटे से दायरे में छोटी-छोटी घटनाएं बहुत बड़ी हो जाती है।

जैसे थोड़ी देर को मैं उदाहरण दूं कि यह घर गिर जाए तो इस घर के दायरे में बहुत बड़ी घटना घट गई। लेकिन जमीन पर कोई बहुत बड़ी घटना नहीं घटी। जमीन पर मकान गिरा, पूरे ब्रह्मांड में कोई घटना ही नहीं घटी। कोई मामला हुआ कि नहीं हुआ, उससे कोई फर्क ही नहीं पड़ता कि मकान गिरा कि नहीं गिरा। जितना बड़ा दायरा होता जाएगा, उतनी घटना जो है, वो गौण होती जाएगी। दायरा जितना छोटा होगा, घटना उतनी महत्वपूर्ण हो जाएगी। चूंकि मैंने कहा नारी की भावना की परिधि, बहुत व्यक्तिगत, साकार घेरे में है, उसमें छोटी-छोटी घटनाएं बहुत बड़े रूप में प्रतीत होती है। वे ही घटनाएं उसके पास खड़े पुरुष को इतनी बड़ी प्रतीत नहीं होतीं।

इसका मायने यह हुआ कि नारी और पुरुष को संतुष्ट जगत की ओर ले जाना है तो उनके भीतर जो स्वाभाविक है, उसको भी परिमार्जित करने के लिए शिक्षण की बहुत जरूरत होगी। पुरुष के परिमार्जन के लिए

मैंने कहा कि उसके लिए ज्यादा से ज्यादा स्त्री सहवास के मौके होने चाहिए तो वह भागदौड़ से मुक्त हो जाएगा।

'अस्पष्ट आवाज में प्रश्न'

उसके मन की कह दूं। आप कहां से बोलती हैं? जब उसके मन की सोचने लगती हैं तो कहां से बोलती हैं?

इसलिए मैं कहूं आपसे कि पुरुष के लिए भी पुरुष से मुक्त होना सामान्य स्थिति में थोड़ा कठिन है। वह भी उसका स्वाभाविक अंग है। यदि आपको ऐसा पुरुष मिल भी जाए जो बहुत मुक्त होकर सोच सके--हालांकि इसके मिलने में भी थोड़ी कठिनाई है--मेरा कहना है दायरा बहुत सीमित होने के कारण कठिनाई होती है। पर इस कठिनाई से मुक्त होना बहुत जरूरी है। और मुक्त हुआ जा सकता है। उस तरह कभी सोचा नहीं गया, उस तरफ प्रश्न लिए नहीं गए। उस तरह का शिक्षण नहीं हुआ, इससे कठिनाई हुई। अब स्त्री भी अपने स्वभाव से यदि पूरी तरह परिचित हो। जैसा कि मैंने उस दिन कहा, पुरुष अपने स्वभाव से पूरी तरह परिचित हो। तो स्वभाव से पूरी तरह परिचित होने में परिवर्तन शुरू हो जाता है। एक तो यह होता है कि अंधा स्वभाव है हमारा, हम उसके हिसाब से चलते जाते हैं। क्रोध हमारा स्वभाविक है, तो कोई हमें अपमान करे, तो क्रोध आता है। इसका मतलब यह नहीं है कि क्रोध परिवर्तित नहीं हो सकता। अगर मैं अपने स्वभाव के प्रति जाग जाऊं, मैं अपने क्रोध के प्रति जाग जाऊं, तो धीरे-धीरे मैं अक्रोध की स्थिति में चला जाऊंगा।

अगर स्त्री अपने असंतोष के प्रति जाग जाए, तो धीरे-धीरे असंतोष से मुक्त हो जाएगी। पुरुष अगर अपनी भागदौड़ के प्रति जाग जाए तो धीरे-धीरे उससे मुक्त हो जाएगा। यानी सारे संबंध इतने जोर से बंधे हुए हैं कि इस संबंध में मैं चर्चा करूं, तो मेरा कहना है ध्यानयुक्त प्रक्रियाएं सारे जीवन में व्याप्त हो जाएं... तो स्त्री धीरे-धीरे अपने स्वभाव का, जो भी उसके भीतर दायरा है उससे मुक्त होगी, पुरुष अपने दायरे से मुक्त होगा। धीरे-धीरे मुक्त होगा। और स्वभाव की जो उसकी अंधी पकड़ है उससे नारी भी मुक्त होती चली जाएगी। लेकिन इसके अतिरिक्त अगर कोई ऐसा सोचने लगे... इसके अतिरिक्त का मेरा मतलब यह है कि सारे मसले चाहे वह इस कोने से शुरू होते हों या उस कोने से, मेरे लिए तो सारे जीवन के मसले घूमकर ध्यान पर पहुंच जाते हैं। मेरे लिए तो केंद्र वहां है।

अगर सारे मसलों का अंतिम हल होना है, तो और सारी व्यवस्था के बीच ध्यान जीवन में केंद्रीय तत्व की तरह आ जाना चाहिए। ध्यान आएगा तो धीरे धीरे स्त्री, स्त्री से मुक्त हो जाएगी, जो उसकी स्वाभाविक अंधी पकड़ है। पुरुष अपने अंधे पुरुष से मुक्त हो जाएगा। और जैसे ही यह अंधापन गया, उन दोनों के बीच एक संबंध होगा, जो बहुत मौलिक होगा।

'अस्पष्ट आवाज में प्रश्न'

हां, उनको समझ पाना आसान हो जाएगा। अभी जो मैंने पूरी की पूरी चर्चा की, वह तो इस बात को मानकर की है कि कोई ध्यान नहीं कर रहा है। सहज स्त्री-पुरुष हैं। उनके बीच अधिकतम प्रीतिकर संबंध, समान अधिकार कैसे हों? मैं इस बात को मानकर चला कि शायद अंधे स्त्री-पुरुष का जगत कोई और बात नहीं, यही जो सहज जगत है इसमें, मनुष्यों के बीच समान अधिकार क्या हों? उसकी चर्चा की है।

इसके अतिरिक्त स्त्री-पुरुष के बदलने की जो बात है, जब सारे सामाजिक अंधे नियमों की व्यवस्था के बाद भी पाया जाएगा कि उनमें कुछ खोट और परेशानी है, जो जुड़ने नहीं देती और मिलने नहीं देती और एक प्रेम के जगत को पूरी तरह बनने नहीं देती है, तो उसके विश्लेषण के लिए तो मैं जो रोज कहता हूं। वह जानना ही चाहिए। उसके लिए कुछ अलग से कहने की बात नहीं।

'अस्पष्ट आवाज में प्रश्न'

चर्चा उन्हीं की थी न!

'अस्पष्ट आवाज में प्रश्न'

तो ठीक है। किसी क्षुद्र मसले की मैं तो चर्चा भी नहीं करता। मेरे लिए बहुत अर्थ का भी नहीं है यह चर्चा करना कि किसी स्त्री को कैसे अधिकार दूं, कैसे पुरुष को अधिकार दूं? मैं तो एक ही चर्चा करता हूं कि कैसे वह अपने भीतर से धीरे-धीरे विकार से मुक्त हो जाए, आसानी से मुक्त हो जाए? चाहे पुरुष हो या स्त्री हो, उससे फर्क नहीं पड़ता। लेकिन अगर उस धरातल पर ही बात हो तो मेरा कहना है कि जो दौड़ चल रही है, स्त्री के जीवन में जो आंदोलन चल रहे हैं, वे आंदोलन अगर इस रूप में होंगे और उनका परिणाम इस भांति आएगा; तो बिना ध्यान के भी जो जगत बनेगा वह ज्यादा सुखद हो सकता है।

ध्यान आएगा तो उससे यह जगत भी सुखद हो सकता है, वह भी। और कोई व्यक्ति कैसी भी स्थिति में हो, उसमें जो परिवर्तन होगा वह बहुत दूसरे स्तर का परिवर्तन होगा। वह आ जाता है, तब तो कोई बात ही नहीं!